The Great "सूरमा"

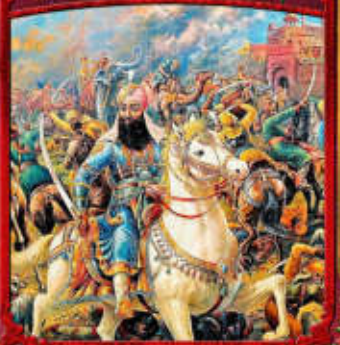

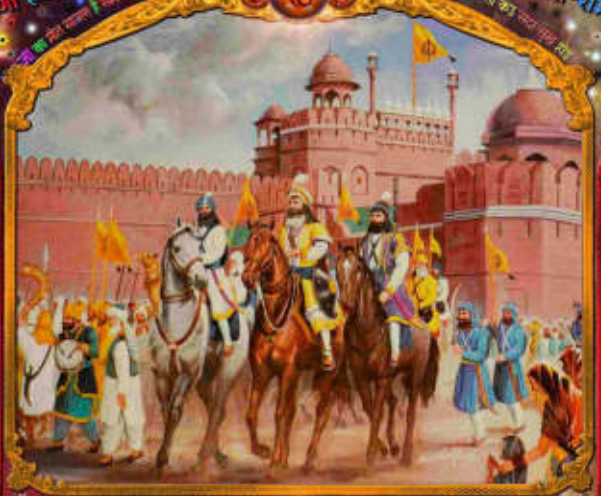

सभ जग जिनह उपाइआ भाई - करण कारण समरथ । जीउ पिंड जिन साजिआ भाई - दे कर अपणी वथ । किन कहीऐ किउ देखीऐ भाई - करता एक अकथ । गुर गोविंद सलाहीऐ भाई - जिस ते जापै तथ । मेरे मन जपीऐ हरि भगवंता । नाम दान देइ जन अपने - दूख दरद का हंता । जा के घर सभ किछ है भाई - नउ निध भरे भंडार । तिस की कीमत ना पवै भाई - ऊचा अगम अपार । जीअ जंत प्रतिपालदा भाई - नित-नित करदा सार । सतिगुर पूरा भेटीऐ भाई - सबद मिलावणहार । सचे चरण सरेवीअह भाई - भ्रम भउ होवै नास । मिल संत सभा मन मांजीऐ भाई - हरि कै नाम निवास । मिटै अंधेरा अगिआनता भाई - कमल होवै परगास । गुर बचनी सुख ऊपजे भाई - सभ फल सतिगुर पास । मेरा तेरा छोडीऐ भाई - होईऐ सभ की धूर । घट-घट ब्रहम पसारिआ भाई - पेखै सुणै हजूर । जित दिन विसरै पारब्रहम भाई - तित दिन मरीऐ झूर । करन करावन समरथो भाई - सरब कला भरपूर । प्रेम पदारथ नाम है भाई - माइआ मोह बिनास । तिस भावै ता मेल लए भाई - हिरदै नाम निवास । गुरमुख कमल प्रगासीऐ भाई - रिदै होवै परगास । प्रगट भइआ परताप प्रभ भाई - मउलिआ धरत अकास । गुर पूरै संतोखिआ भाई - अहिनिस लागा भाउ । रसना राम रवै सदा भाई - साचा साद सुआउ । करनी सुण-सुण जीविआ भाई - निहचल पाइआ थाउ । जिस परतीत न आवई भाई - सो जीअड़ा जल जाउ । बहु गुण मेरे साहिबै भाई - हउ तिस कै बल जाउ । ओह निरगुणीआरे पालदा भाई - देइ निथावे थाउ । रिजक समबाहे सास-सास भाई - गूड़ा जा का नाउ । जिस गुर साचा भेटीऐ भाई - पूरा तिस करमाउ । तिस बिन घड़ी न जीवीऐ भाई - सरब कला भरपूर । सास गिरास न विसरै भाई - पेखउ सदा हजूर । साधू संग मिलाइआ भाई - सरब रहिआ भरपूर । जिना प्रीत न लगीआ भाई - से नित-नित मरदे झूर । अंचल लाइ तराइआ भाई - भउजल दुख संसार । कर किरपा नदर निहालिआ भाई - कीतोन अंग अपार । मन-तन सीतल होइआ भाई - भोजन नाम अधार । नानक तिस सरणागती भाई - जि किलविख काटणहार ।

हउ वारी वंञा - घुमीऐ वंञा - तउ साहिब के नावै । अमली अमल न अमबड़ै - मछी नीर न होइ । जो रते सह आपणै - तिन भावै सभ कोइ । नानक तेरा वारीआ - तू साहिब मै रास ।

"The Great सूरमा"

1. सभ जग जिनह उपाइआ भाई – करण कारण समरथ ।
जीउ पिंड जिन साजिआ भाई – दे कर अपणी वथ ।

अर्थः- हे भाई ! जिस प्रभु ने जगत पदा किया है, जो जगत का मूल और सर्वशक्तिमान है, जिसने अपनी सामर्थ्य से मनुष्य का शरीर तथा प्राण बनाया है, वह कर्तार किसी के द्वारा भी व्यक्त नहीं किया जा सकता ।

किन कहीऐ किउ देखीऐ भाई – करता एक अकथ । गुर गोविंद सलाहीऐ भाई – जिस ते जापै तथ ।

अर्थः- हे भाई ! उस कर्तार का स्वरूप अव्यक्त है । उसे कैसे देखा जाए ? गोविन्द-रूप गुरु की स्तुति करनी चाहिए, क्योंकि गुरु द्वारा ही समस्त जगत के मूल उस परमात्मा की सूझ पैदा हो सकती है ।

मेरे मन जपीऐ हरि भगवंता । नाम दान देइ जन अपने – दूख दरद का हंता ।

अर्थः- हे मन ! सदा भगवान का नाम-स्मरण करना चाहिए । वह भगवान अपने सेवक को अपने नाम की देन देता है । वह समस्त दुखों और पीड़ाओं का नाशक है ।

जा के घर सभ किछ है भाई – नउ निध भरे भंडार । तिस की कीमत ना पवै भाई – ऊचा अगम अपार ।

अर्थः- हे भाई ! जिस प्रभु के घर में हर चीज़ मौजूद है, जिसके घर में जगत के नौ खज़ाने मौजूद हैं, जिसके घर में भण्डार भरे पड़े हैं, उसका मूल्यांकन नहीं हो सकता । वह सर्वोच्च, अगम्य और अनन्त है ।

जीअ जंत प्रतिपालदा भाई – नित नित करदा सार । सतिगुर पूरा भेटीऐ भाई – सबद मिलावणहार ।

अर्थः- वह प्रभु समस्त जीवों का पालन-पोषण करता है, वह सदा ही सबकी देखभाल करता है । हे भाई ! पूर्णगुरु को मिलना चाहिए, (वही) ज्ञान का प्रकाश देकर परमात्मा के साथ मिला सकनेवाला है ।

सचे चरण सरेवीअह भाई - भ्रम भउ होवै नास । मिल संत सभा मन मांजीऐ भाई - हरि के नाम निवास ।

अर्थः- सत्यस्वरूप परमात्मा के चरणों में लगाव रखना चाहिए । इस प्रकार मन की दुबिधा और भय का विनाश हो जाता है । हे भाई ! सत्संगति में मिलकर मन को स्वच्छ करना चाहिए (इससे) परमात्मा के नाम में मन स्थिर हो जाता है ।

मिटै अंधेरा अगिआनता भाई - कमल होवै परगास । गुर बचनी सुख ऊपजै भाई - सभ फल सतिगुर पास ।

अर्थः- सत्संगति से ही आत्मिक जीवन के प्रति अज्ञानता का अँधेरा मिट जाता है, हृदय का कमल खिल जाता है । हे भाई ! गुरु की शिक्षा पर आचरण करके आत्मिक आनन्द पैदा होता है। गुरु सर्वफल-प्रदाता है ।

मेरा तेरा छोडीऐ भाई - होईऐ सभ की धूर । घट-घट ब्रहम पसारिआ भाई - पेखै सुणै हजूर ।

अर्थः- हे भाई ! भेदभाव त्याग देना चाहिए, सबके चरणों की धूलि बन जाना चाहिए । परमात्मा हर एक शरीर में विद्यमान है । वह सबके साथ-साथ होकर सबको देखता है, सबकी सुनता है ।

जित दिन विसरै पारब्रहम भाई – तित दिन मरीऐ झूर । करन करावन समरथो भाई – सरब कला भरपूर ।

अर्थः- हे भाई ! जिस दिन परमात्मा विस्मृत हो जाएगा, उसी दिन दुखी होकर मनुष्य आत्मिक मृत्यु को प्राप्त करेगा । हे भाई ! परमात्मा सब कुछ कर सकनेवाला तथा करा सकनेवाला है । परमात्मा में सब शक्तियाँ मौजूद हैं ।

प्रेम पदारथ नाम है भाई – माइआ मोह बिनास । तिस भावै ता मेल लए भाई – हिरदै नाम निवास ।

अर्थः- हे भाई ! जिसके भीतर प्रभु-प्रेम का बहुमूल्य धन विद्यमान है, हरि-नाम मौजूद है, उसके भीतर से माया-मोह का समापन हो जाता है । (जब) उस प्रभु को ठीक जचता है और (जिसे) उसने अपने चरणों में जगह दी होती है, उसके हृदय में प्रभु-नाम का निवास हो जाता है ।

गुरमुख कमल प्रगासीऐ भाई – रिदै होवै परगास । प्रगट भइआ परताप प्रभ भाई – मउलिआ धरत अकास ।

अर्थः- हे भाई ! गुरु के सान्निध्य में रहने से हृदय-कमल खिल जाता है और हृदय में आत्मिक ज्ञान का प्रकाश हो जाता है । (गुरु का शरणागत होने पर) जीव के भीतर परमात्मा की शक्ति प्रकट हो जाती है । (वास्तव में प्रभु की शक्ति अपरिमित है) उसके बल पर ही धरती और आकाश स्थित हैं ।

गुर पूरै संतोखिआ भाई – अहिनिस लागा भाउ । रसना राम रवै सदा भाई – साचा साद सुआउ ।

अर्थः- जिस मनुष्य को सतिगुरु ने सन्तोष की देन दी, उसके भीतर दिन-रात प्रभु-प्रेम बना रहता है, वह मनुष्य सदा जिह्वा द्वारा परमात्मा का नाम जपता रहता है । नाम जपने का यह लक्ष्य उसके भीतर अवस्थित रहता है ।

करनी सुण-सुण जीविआ भाई – निहचल पाइआ थाउ । जिस परतीत न आवई भाई – सो जीअड़ा जल जाउ ।

अर्थः- वह मनुष्य अपने कानों से (प्रभु की गुणस्तुति सुनकर आत्मिक जीवन प्राप्त करता रहता है और प्रभु-चरणों में) निवसित रहता है । लेकिन, हे भाई ! जिस मनुष्य को गुरु पर विश्वास नहीं होता, उसकी आत्मा विकारों में जल जाती है ।

बह गुण मेरे साहिबै भाई – हउ तिस कै बल जाउ । ओह निरगुणीआरे पालदा भाई – देइ निथावे थाउ ।

अर्थः- हे भाई ! मेरे मालिक-प्रभु में असंख्य गुण हैं, मैं उस पर बलिहारी जाता हूँ । वह मालिक गुणहीन व्यक्ति का पालन करता है, वह निराश्रित को आश्रय भी देता है ।

रिजक समबाहे सास-सास भाई – गूड़ा जा का नाउ । जिस गुर साचा भेटीऐ भाई – पूरा तिस करमाउ ।

अर्थः- वह मालिक प्रत्येक श्वास के साथ भोजन पहुँचाता है, उसका नाम (भक्त के भीतर प्रेम का) गहरा रंग चढ़ा देता है । हे भाई ! जिसे सतिगुरु मिल जाता है, उसका भाग्य उदित हो जाता है ।

तिस बिन घड़ी न जीवीऐ भाई - सरब कला भरपूर । सास गिरास न विसरै भाई - पेखउ सदा हजूर ।

अर्थः- हे भाई ! वह परमात्मा शक्तिसम्पन्न है, उसके बिना एक घड़ी भी आत्मिक जीवन नहीं रह सकता । हे भाई ! मैं तो उस परमात्मा को अपने साथ-साथ देखता हूँ । मुझे वह खाते हुए, साँस लेते हुए कभी भी नहीं विस्मृत होता ।

साधू संग मिलाइआ भाई - सरब रहिआ भरपूर । जिना प्रीत न लगीआ भाई - से नित-नित मरदे झूर ।

अर्थः- हे भाई ! जिस मनुष्य को परमात्मा ने गुरु की संगति दे दी, उसे सर्वत्र परमात्मा के दर्शन होते हैं । लेकिन, हे भाई ! जिनके भीतर परमात्मा का प्रेम पैदा नहीं होता, वे सदा चिन्तातुर होकर आत्मिक मृत्यु पाते हैं ।

अंचल लाइ तराइआ भाई - भउजल दुख संसार । कर किरपा नदर निहालिआ भाई - कीतोन अंग अपार ।

अर्थः- शरणागत को अवलम्ब देकर प्रभु आप इस दुख रूपी संसार-समुद्र से पार उतार देता है । प्रभु कृपा करके उस पर दया करता है, उसका अधिकतम समर्थन करता है ।

मन-तन सीतल होइआ भाई - भोजन नाम अधार । नानक तिस सरणागती भाई - ज किलबिख काटणहार । (639-640)

अर्थः- हे भाई ! उस मनुष्य का मन, तन शान्त हो जाता है, वह प्रभु के नाम की खुराक (आत्मिक जीवन के लिए) खाता है, नाम का आश्रय लेता है । नानक का कथन है कि उस परमात्मा की शरण लो, जो सारे पाप काट देता है ।

a. जा कउ हरि रंग लागो इस जुग मह - सो कहीअत है सूरा । आतम जिणै सगल वस ता कै - जा का सतिगुरु पूरा ।

अर्थः- हे भाई ! इस जगत में वह मनुष्य शूरवीर कहलाता है, जिसके हृदय में प्रभु-प्रेम पैदा हो जाता है । पूर्णगुरु जिस मनुष्य का सहायक है, वह मनुष्य अपने मन को जीत लेता है और समस्त सृष्टि उसके वश में हो जाती है ।

ठाकुर गाईऐ आतम रंग । सरणी पावन नाम धिआवन - सहज समावन संग ।

अर्थः- (अतः) मन के स्नेह से प्रभु की गुणस्तुति करनी चाहिए । उस परमात्मा की शरण में रहना और उसका नाम-स्मरण ही एक मात्र तरीका है, जिससे आत्मिक रूप से स्थिर होकर उसमें लीन हुआ जाता है ।

जन के चरन वसह मेरे हीअरे - संग पुनीता देही । जन की धूर देहु किरपा निध - नानक के सुख एही । (679)

अर्थः- हे कृपा के खज़ाने प्रभु ! यदि तुम्हारे दासों के चरण मेरे हृदय में स्थिर हो जाएँ अर्थात मैं तुम्हारे दासों के चरणों में नेह लगाऊँ, तो उनकी संगति में मेरा शरीर पवित्र हो जाए । मुझे अपने दासों के चरणों की धूलि प्रदान करो, मेरे (नानक के) लिए यही सुख है ।

b. गगन दमामा बाजिओ - परिओ नीसाने घाउ । खेत ज माडिओ सूरमा - अब जूझन को दाउ । सूरा सो पहिचानीऐ - जु लरै दीन के हेत । पुरजा-पुरजा कट मरै - कबहू न छाडै खेत ।

(श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी - 1105)

अर्थः- गगन में युद्ध का बाजा बजा है, ढोल पर चोट पड़ी है । शूरवीरों ने (इसे सुनते ही) युद्धभूमि में अपनी स्थिति सम्हाल ली है, क्योंकि अब रण की वेला है । (अर्थात दशम द्वार में, जहाँ अनाहत नाद श्रवण होता है, हरि-नाम-ध्वनि पैदा हुई; जिससे हृदय-कमल पर चोट पहुँची- प्रभु-पथ पर कुछ करने की प्रेरणा मिली । तब शूरवीर जीवात्मा ने जीवन रूपी युद्धभूमि में स्थान ग्रहण किया और काम-क्रोधादि शत्रुओं से युद्ध ठान लिया) । वास्तविक शूरवीर वही है, जो अनाथों, निर्बलों के लिए लड़ता है । वह अंग-अंग से कट मरता है, किन्तु दीनों की रक्षा में कभी रण-भूमि नहीं त्यागता। (अर्थात जब जीवात्मा हृदय में प्रभु की सुभावना को पाता और उसे बनाए रखने के लिए संघर्ष करता है, तो मरण स्वीकारता है, काम-क्रोधादि शत्रुओं के सम्मुख कभी हथियार नहीं डालता) ।

c. हउ वारी वंजा - खंनीऐ वंजा - तउ साहिब के नावै ।

अर्थः- हे मेरे साहिब ! मैं तेरे नाम से सदके हूँ, कुर्बान जाता हूँ ।

अमली अमल न अमबड़ै - मछी नीर न होइ । जो रते सह आपणे - तिन भावै सभ कोइ ।

अर्थः- अगर किसी नशेबाज़ को नशे की सामग्री न मिले, यदि मछली को पानी न मिले (तो वे अत्यन्त दुखी होते हैं), इसी प्रकार, हे प्रभु ! तेरा नाम जिनकी ज़िन्दगी का सहारा बन गया है, वे तुम्हारी स्मृति के बिना नहीं रह सकते । उन्हें और कुछ भी अच्छा नहीं लगता । जो व्यक्ति अपने पति-प्रभु के प्रेम में रंगे हुए हैं, उन्हें सभी भले लगते हैं ।

साहिब सफलिओ रुखड़ा - अमित जा का नाउ । जिन पीआ ते त्रिपत भए - हउ तिन बलिहारै जाउ ।

अर्थः- मालिक-प्रभु फलों वाला एक सुन्दर वृक्ष (समझ लो), इस वृक्ष का फल है उस प्रभु का नाम, जो जीव को अटल आत्मिक जीवन देनेवाला है; जिन व्यक्तियों ने यह जीवनदायक रस पिया है, वे तृप्त हो जाते हैं । मैं उन पर बलिहारी जाता हूँ ।

मै की नदर न आवही - वसह हभीआं नाल । तिखा तिहाइआ किउ लहै - जा सर भीतर पाल ।

अर्थः- हे प्रभु ! तुम सब जीवों के साथ-साथ रहते हो, परन्तु तुम मुझे दिखाई नहीं देते । (जीव अज्ञानवश अपने भीतर अवस्थित सरोवर को नहीं जान पाता और दुखी होता फिरता है ।) प्यास से व्याकुल व्यक्ति को पानी मिले भी कैसे ? जब उसके और उसके भीतर अवस्थित सरोवर के

मध्य दीवार बनी हो (माया के मोह की बनी कोई दीवार अमृत सरोवर में से नाम-जल तक पहुँचने नहीं देती) ।

नानक तेरा बाणीआ - तू साहिब मै रास । मन ते धोखा ता लहै - जा सिफत करी अरदास । (श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी - 557)

अर्थः- हे प्रभु ! कृपा करो, ताकि नानक तुम्हारे नाम का व्यापारी बन जाए, तुम मेरे साहूकार होओ और तुम्हारा नाम मेरी पूंजी बने । मेरे भीतर से दुनिया वाला भय तब ही दूर हो सकता है, यदि मैं हमेशा प्रभु की गुणस्तुति करता रहूँ और यदि उसके द्वार पर प्रार्थना, विनय करता रहूँ ।

(पाठी माँ साहिबा)

हक हक हक

(शब्द गुरु प्रत्यक्षता)

ऐक शब्द

उपरोक्त अर्थों में कहे गये गुरू-सतगुरू-शबद-नाम-सच्चा नाम इत्यादि विशेष - विशेषो का केवल और केवल ऐक ही अर्थ विशेष है कि - "रागमई प्रकाशित सुगंधित आवाज़ विशेष" । इसके आलावा सारे अर्थ केवल मनमत हैं - गुरूमत का इससे कोई संबंध विशेष नहीं हैं ।

"सबद गुरू - सुरत धुन चेला । गुण गोबिंद - नाम धुन बाणी ।"

उपरोक्त पक्तियों से गुरु साहब ने साफ स्पष्ट कर दिया है कि जो शिद्दत से अपने आप को मनुष्यता के भले के लिए खत्म करता है या शहादत देता है उसे तीनों मुल्कों के सभी प्रकार के सुख उपलब्ध विशेष हो जाते हैं । इन पक्तियों का ऊपरी या भाहरी अर्थ तो यही निकाला विशेष जाता है इस संसार में, पर इन पक्तियों का एक दूसरा रूहानी अर्थ विशेष भी है । तो जो सन्यासी विशेष आत्मा है उसका क्या ? उसका तो कहीं वर्णन विशेष नहीं किया जाता कि उसने जो अपना पूरा मनुष्य जन्म उस एक परमात्मा विशेष पर न्योछावर कर दिया है उसका आगे क्या होगा ? मनुष्य जन्म दिया ही कमाई विशेष के लिए गया है इसमें पुरुषार्थ करना ही जीव विशेष का प्राथमिक धर्म विशेष है !

"भजहु गोबिंद भूल मत जाहु । मानस जनम का एही लाहु ।"

महाभारत के आखिर में, 18 दिन के युद्ध में लगभग सभी पुरुष योद्धा मारे गए (कहा जाता है कि सिर्फ़ कुछ ही बचे थे), ऋषि व्यास ने बचे हुए लोगों को रास्ता दिखाने और उन्हें अंतिम समाधान देने के लिए, एक चमत्कार किया । जब धृतराष्ट्र, गांधारी और कुंती वनवास के दौरान गंगा के तट पर ऋषि व्यास के आश्रम में ठहरे हुए थे, तब युधिष्ठिर और अन्य पांडव भी उनसे मिलने वहाँ पहुँचे । युद्ध में अपने पुत्रों और प्रियजनों को खोने का दुख अभी भी उनके हृदयों में जीवित था । उनका विलाप देखकर व्यास जी ने उन्हें सांत्वना दी और अपनी तपोबल से एक रात के लिए परलोक

और इस लोक के बीच का द्वार खोलने का वचन दिया । सूर्यास्त के बाद पूरनमासी को व्यास जी ने गंगा के पवित्र जल में प्रवेश किया और युद्ध में मारे गए सभी योद्धाओं का आह्वान किया । देखते ही देखते भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, अभिमन्यु, दुर्योधन और उनके सभी पुत्र व संबंधी तथा सैन्य बल स्वर्ग बैकुंठ से धरती की ओर उतरने लगे, अपने पूरे शाही लशकर में गंगा के सतह पर जुलूस के तौर पर निकलने लगे । इस अलौकिक दृश्य की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन मृत आत्माओं के मन में एक-दूसरे के प्रति कोई क्रोध या द्वेष नहीं था । कौरव और पांडव एक-दूसरे से बहुत प्रेम के साथ मिले । पूरी रात परिजनों ने अपने मृत प्रियजनों के साथ बिताई । गांधारी ने अपने पुत्रों को और कुंती ने कर्ण को देखकर अपना दुख साझा किया । इस मिलन ने जीवित लोगों के मन से मृत्यु का भय और बिछड़ने का शोक समाप्त कर दिया । व्यास जी के इस चमत्कार ने यह सिद्ध किया कि वह धर्म युद्ध में मारे गए हैं और वह सब सुखी हैं । अगर वह सब सुखी है तो आप बाकी सब क्यों दुखी हो रहे हो ।

अब आत्मा विशेष को यह कीमती मनुष्य जन्म विशेष मिला है तो उसे पहले पूर्ण मनुष्य विशेष बनना है । मानस जन्म विशेष की परिभाषा क्या है ? "हुकम पछाने सु एको जाने – बंदा कहीऐ सोई ।" बंदा यानी कि इंसान विशेष वही कहलाता है जो उस परमात्मा की रज़ा विशेष में पुरुषार्थ विशेष करते हुए उसकी आशिकी में लीन अपना कीमती जन्म विशेष व्यतीत करता है पूर्ण निष्ठा से । अब आत्मा विशेष कहे कि मुझे किसी विशिष्ट धर्म

विशेष का अनुयाई या शिष्य विशेष बनना है तो, इन बातों का कोई अर्थ विशेष नहीं रहता । आत्मा इंसान के जन्म में आई है तो उसे पहले इंसान बनने के लिए संघर्ष विशेष करना चाहिए । अगर इंसानी जन्म विशेष में मर्यादा में नहीं रहोगे तो हो सकता है आपको आगे दुंम, पंख, गिलफड़े, विविध हाथ-पैर इत्यादि इत्यादि आगे के ८५ लाख अनंत जूनो विशेषो में भर्मण के तौर में प्राप्त हो सकते हैं पक्के रूप से ! आत्मा विशेष चाहे संसार अथवा पर्मारथ में से किसी पर भी कुर्बान हो तो दोनों में उसका फायदे का ही सौदा है लेकिन अगर संसार विशेष को भी लूटोगे और परमात्मा से भी रूष्ट रहोगे तो ८५ लाख जून में भ्रमण विशेष निश्चित है आत्मा विशेष का विशेष तौर पर.....! "बिसटा के कीड़े - बिसटा कमावह - फिर बिसटा माह पचावणिआ ।" इसलिए बंदा विशेष बनने के लिए आत्मा विशेष को ततपर पुरुषार्थ, इंद्रियों से मशक्कत, और परमात्मा विशेष से मिलने की घोर लालसा विशेष अथवा अपने मनुष्य जन्म की कीमत की पहचान विशेष तथा कर्म संबंधी अथवा परमार्थ का कीमती ज्ञान विशेष की जानकारी होनी चाहिए, इस विकराल भवसागर रुपी संसार को पार विशेष करने हेतु अपने निजी लाभ विशेष के लिए.....! "गुर सेवा ते भगत कमाई । तब इह मानस देही पाई । इस देही कउ सिमरह देव । सो देही भज हरि की सेव ।" और इस जानकारी विशेष का बोध भी उसे युवा स्थिति में ही होना चाहिए क्योंकि अगर उस वक्त परमात्मा की बंदगी नहीं करेगा तो कब करेगा ? जब बुढ़ापा या मौत सिर पर आ पहुंचेगी तो उसे वक्त तो यह बिल्कुल भी संभव विशेष है ही नहीं ! उस वक्त तो केवल आत्मा विशेष के

हाथ में अफसोस और पछतावे और ४५ लाख जून की गिफ्ट के अलावा कुछ और बचेगा ही नहीं.....! इसलिए अगर जो संसार में सिर्फ अपने या अपनो के निजी स्वार्थ विशेष के लिए पदार्थ, संपदा संकलन करता रहता है और उसे छुपा कर औरों से वंचित करता, इकट्ठा करता रहता है तो उसका अंत केवल नार्को विशेषो का भागीदार बनने का ही होता है । इसीलिए आत्मा विशेष को मनुष्य जन्म में निरंतर पुरुषार्थ विशेष करना चाहिए, ईमानदारी से जीवन व्यतीत करना चाहिए तथा अपने मनुष्य जन्म की कीमत को पहचान कर मर्यादा में रहना चाहिए तथा इंद्रियों का इस्तेमाल एक सीमा तक करना चाहिए ताकि यह जीवन सवार के आगे बढ़ सके । इसलिए आत्मा विशेष जितना मर्जी चाहे कमाए लेकिन ईमानदारी से और अपनी जरूरत के बाद, जरूरतमंदों में तक्सीम करें क्योंकि जो कुछ उसने कमाया है, माया के रूप में, यह उसके साथ तो जाएगा नहीं ! इसलिए जरूरतमंदों को बाटां हुआ परमात्मा की प्रसन्नता का कर्म बन जाता है । अब यह आत्मा विशेष को चयन करना है कि उसने संसार की खुशी प्राप्त करनी है या परमात्मा विशेष की । संसार विशेष आत्मा के लिए ही बनाया गया है लेकिन यह आत्मा विशेष को तय करना है कि उसने कितनी सीमा बांधनी है । सन्यास जैसी कोई चीज है ही नहीं यह तो सिर्फ इंसान का बनाया हुआ है । तो इस तरीके से आत्मा विशेष संसार में रहकर के पुरुषार्थ करें, कमाई करें और अपनी जरूरत से अधिक संपदा को जरूरतमंदों में वितरित कर अपना अगला सुधारे और उसे परमात्मा विशेष की प्रसन्नता का पात्र बने । क्योंकि उसका बांटा हुआ अगले

जन्म में उसे वापस दिया जायेगा ब्याज सहित और अधिक मिलेगा, तो इस तरीके से पौड़ी दर पौड़ी वह अपना उत्थान तय करें और अगले मंडलों में विचरण करते हुए उस परमात्मा विशेष में लीन हो जाए ।

जय और विजय भगवान विष्णु के दिव्य निवास वैकुंठ के दिव्य द्वारपाल (गेटकीपर) हैं, यह पदवी उन्होंने अपने तप और नारायण के प्रति अतुल निष्ठा से कमाया हैं । एक बार ब्रह्मा जी के मानस पुत्र तप करने के बाद , चारों कुमार (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार) जो कि बाल अवसथा में नग्न रहते थे, भगवान विष्णु के दर्शन के लिए वैकुंठ धाम पहुँचे । जय और विजय ने उन्हें बालक समझकर और प्रभु के विश्राम का तर्क देकर द्वार पर ही रूष्ट भाषा का प्रयोग कर रोक दिया । ऋषियों ने इसे अपना अपमान समझा और क्रोध में आकर जय-विजय को मृत्युलोक (पृथ्वी) पर पत्थर के रूप में सात जन्म लेने का श्राप दे दिया । श्रापित होने के बाद द्वारपाल माफी मांगने लगे और यह शोर सुन भगवान विष्णु अपनी सभा में से बाहर आए । जब भगवान विष्णु वहाँ पहुँचे, तो उन्होंने ऋषियों से क्षमा माँगी । जय-विजय के बार-

बार विनती करने पर प्रभु ने उन्हें दो विकल्प दिए - सात जन्मों तक भगवान के भक्त के रूप में या तीन जन्मों तक भगवान के कट्टर शत्रु के रूप में (जितनी ज्यादा गालियां दोगे उतनी जल्दी यह समय कटेगा) । उसे वक्त सतयुग में लंबी उम्रें होती थी - कम से कम लाखों साल । उन्होंने कहा आप हमारे ईस्ट हो हम आपको कैसे गालियां दे सकते हैं पर, प्रभु से दूर रहने का समय कम करने के लिए उन्होंने शत्रुता का मार्ग चुना ताकि वे जल्द ही वैकुंठ वापस लौट सकें । तीनों जन्मों में वे सगे भाई बने और स्वयं भगवान ने अवतार लेकर उनका वध (उद्धार) किया । ये हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु बने । भगवान विष्णु ने वराह और नृसिंह अवतार लेकर इनका वध किया । ये रावण और कुंभकर्ण के रूप में जन्मे, जिनका वध भगवान राम ने किया । अंतिम जन्म में ये शिशुपाल और दंतवक्र बने और भगवान कृष्ण के हाथों मुक्ति प्राप्त की ।

हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु दो शक्तिशाली असुर भाइयों के रूप में जन्मे जिन्होंने काफी घोर तप किये और भगवान से वरदान प्राप्त किये प्रजा की पालना हेतु । तपो उपरानत हिरण्याक्ष ने सिद्धियां प्राप्त कर नगर बसाये और प्रजा की पालना शुरू करी । अहंकार में आ कर प्रजा पालना छोड़ अपनो तक सिमित रह कर पृथ्वी को चुराकर पाताल लोक में छिपा दिया था । तब भगवान विष्णु ने वराह अवतार (सूअर का रूप) धारण कर उसका वध किया और पृथ्वी को वापस स्थापित किया । तत उपरांत अपने भाई की मृत्यु से क्रोधित होकर हिरण्यकशिपु विष्णु का घोर शत्रु बन गया । उसने ब्रह्मा जी की कठिन तपस्या की और एक ऐसा

वरदान प्राप्त किया कि उसे न कोई मनुष्य मार सकता था न पशु, न दिन में न रात में, न घर के अंदर न बाहर, और न ही किसी अस्त्र या शस्त्र से । वरदान पाकर हिरण्यकशिपु ने स्वयं को अजेय मान लिया था और तीन लोकों पर अपना आतंक फैलाना शुरू किया । उसने घोषणा की कि पूरे ब्रह्मांड में उसके अलावा कोई दूसरा भगवान नहीं है । हिरण्यकशिपु ने स्वयं को ईश्वर घोषित कर धार्मिक कार्यों और विष्णु-भजन पर रोक लगा दी । उसने देवताओं को स्वर्ग से निकाला, ऋषियों को प्रताड़ित किया और प्रकृति की शक्तियों को वश में कर ब्रह्मांड में आतंक मचा दिया । हिरण्यकशिपु का पुत्र होने के बावजूद, प्रह्लाद जन्म से ही भगवान विष्णु (नारायण) के परम भक्त थे । जब प्रह्लाद अपनी माता के गर्भ में थे, तब उन्होंने देवर्षि नारद से विष्णु भक्ति का ज्ञान प्राप्त कर लिया था । हिरण्यकशिपु चाहता था कि पूरा संसार उसे ही ईश्वर मानकर पूजे, लेकिन नन्हा प्रह्लाद केवल नारायण का जाप करता था ।

"जो न भजते नाराइणा । तिन का मै न करउ दरसना ।"

हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद की भक्ति को बदलने के लिए बहुत प्रयास किए, उसे पहाड़ से नीचे फेंका गया, हाथियों के पैरों तले कुचलवाने की कोशिश की गई और जहरीले सांपों के बीच छोड़ा गया, लेकिन हर बार नारायण ने उसकी रक्षा की । वरदान प्राप्त होलिका प्रह्लाद को जलाने के लिए चिता पर बैठी, किंतु प्रभु कृपा से होलिका भस्म हो गई और प्रह्लाद सुरक्षित रहे । असफल होने पर उसने अपने ही पुत्र को मारने की ठान ली । अंततः क्रोधित

होकर हिरण्यकशिपु ने एक खंभे को लात मारकर प्रह्लाद से पूछा, "कहाँ है तेरा भगवान ? क्या इस खंभे में भी है ?" प्रह्लाद के विश्वास को सच करने के लिए भगवान विष्णु खंभे को फाड़कर नृसिंह अवतार के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने हिरण्यकशिपु के वरदान की सभी शर्तों का पालन करते हुए उसका वध किया । भगवान नृसिंह का क्रोध इतना भीषण था कि केवल प्रह्लाद की शांत प्रार्थना ही उन्हें शांत कर पाई ।

"दुरमत हरणाखस दुराचारी । प्रभ नाराइण गरब प्रहारी । प्रहलाद उधारे किरपा धारी ।"

अर्थात जो मनुष्य नारायण (परमात्मा) का स्मरण या भजन नहीं करते, परमात्मा ऐसे (अकृतघ्न) व्यक्तियों के दर्शन करना भी स्वीकार नहीं करता । ईश्वर की भक्ति के बिना जीवन का

कोई मूल्य नहीं है । "दर्शन न करने" का अर्थ अहंकार नहीं, बल्कि ऐसी संगत (कुसंगति) से बचने की प्रेरणा है जो मनुष्य को आध्यात्मिक मार्ग और परमात्मा की याद से विमुख करती है । इसलिए अपना मूल मार्ग पहचानो और शीघ्र ही उस पर निष्ठा से चलना शुरू हो जाओ । वह परमात्मा सदा तेरे अंग-संग बसता है, गुरु की मति लेकर उसके मिलाप का स्वाद लो । हे मन ! अगर तू अपनी अस्लियत समझ ले तो उस पति-प्रभु से तेरी गहरी जान-पहचान बन जाएगी, तब तुझे ये समझ भी आ जाएगा कि आत्मिक मौत क्या चीज है और आत्मिक जिंदगी क्या है ।

"मन तूं जोत सरूप है आपणा मूल पछाण । मन हरि जी तेरै नाल है गुरमती रंग माण ।"

भगवान विष्णु के परम भक्त ध्रुव की कथा दृढ़ संकल्प और अडिग विश्वास का प्रतीक है । राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं—सुनीति और सुरुचि । राजा सुरुचि से अधिक प्रेम करते थे । एक दिन जब बालक ध्रुव (सुनीति के पुत्र) अपने पिता की गोद में बैठने लगे, तो सुरुचि ने उन्हें अपमानित कर उतार दिया और कहा कि राजा की गोद में बैठने के लिए उन्हें उनके गर्भ से जन्म लेना होगा । दुखी ध्रुव अपनी माता सुनीति के पास गए, जिन्होंने उन्हें समझाया कि केवल भगवान नारायण ही उन्हें वह स्थान दे सकते हैं जिसे कोई छीन न सके । जिसका कोई नहीं होता उसको परमात्मा प्यार करता है । यह बात भक्त ध्रुव के दिमाग में बैठ गई कि उसने परमात्मा की आराधना करनी है और उसका प्यार का

पात्र बनना है । ५ वर्ष की अल्पायु में ध्रुव ने मधुबन जाकर तपस्या करने का द्रढ संकलप किया । राजा उत्तानपाद ने जब देखा कि उनका ५ साल का नन्हा पुत्र घोर जंगल की ओर जा रहा है, तो उनका हृदय ग्लानि से भर गया । उन्होंने ध्रुव को गले लगाना चाहा और कहा कि तुम अभी बहुत छोटे हो और वन हिंसक पशुओं और कठिनाइयों से भरा है, इस खेलने कूदने की आयु में तपस्या करना उचित नहीं है, तुम वापस लौट आओ तो मैं तुम्हें अपने राज्य का आधा हिस्सा दे दूंगा । भक्त ध्रुव ने सोचा कि मैंने तो अभी सिर्फ तपस्या करने का सोचा ही है तो मुझे आधा राज्य प्राप्त हो रहा है तो अगर मैं तपस्या करूंगा तो उसका फल कितना बड़ा विशेष होगा । बालक ने विनय पूर्ण लेकिन दृढ़ स्वर में कहा कि अब उसे किसी भी सांसारिक वस्तु या अपने पिता की गोद की लालसा विशेष नहीं है । उसकी माता ने जो उसे सत्य दिखाया है उसके लिए वह बड़ा आभारी है और वह इस संसार में ऊंचे से ऊंचे पद और सम्मान की प्राप्ति केवल परमात्मा विशेष द्वारा की कृपा से ही संभव है । उसने कहा कि भगवान ही दुखों को दूर करने वाले हैं और यदि वह उन्हें प्राप्त कर सका तो वह अपने और अपनी माता के कुल का उद्धार कर सकेगा । राजा के अनेक युक्तियां और प्रयत्नों के बावजूद भी ध्रुव आधी रात को दृढ़ संपर्क संकल्प के साथ वन में तपस्या करने चला गया । वन में पहुंचने के बाद राजा खोजते उसके पास पहुंचे और अनेक मिन्नत और अनुरोध किये कि वह वापस चले और अपना राज धर्म निभाएं । राजा ने कहा कि वह उसे पूरा राज्य और जो उनका है उसे सौंप देंगे और खुद तपस्या करने चले जाएंगे

लेकिन वह वापस चले घर । लेकिन ध्रुव ने दृढ़ संकल्प ले लिया था कि उसने घोर तपस्या करनी है ।

"अटल भइओ धूअ जा कै सिमरन अर निरभै पद पाइआ ।"

उपरोक्त दृष्टांत से गुरु साहब ने साफ स्पष्ट कर दिया है की जिसने अपने आप को इस संसार के लिए न्योछावर अथवा कुर्बान कर दिया बिना स्वार्थ के उन्हें तो इन तीनों मुल्कों के सारे सुख विशेष प्राप्त हो जाते हैं । लेकिन उस आत्मा विशेष का क्या जिसने अपना सर्वस्व, निस्वार्थ उस परमात्मा विशेष पर कुर्बान कर दिया, उन्हें क्या प्राप्त होगा ? गुरु साहब साफ स्पष्ट कर रहे हैं की असली सुरमा विशेष किसी भी कल में वही आत्मा विशेष है जिसने निस्वार्थ, निष्कपट और पूर्ण श्रद्धा विशेष से अपने ऊपर हरि या नाम का रंग चढ़ाया तथा पूर्ण क्षमता और निष्ठा से अपने विकारों से लड़ाई करी, तथा इस भवसागर रुपी मृत्यु लोक से अपने आप को उबरा और उस एक परमात्मा विशेष में लीन हो गई सदा के लिए । तो सूरमें दोनों ही है एक ने अपने आप को संसार पर कुर्बान किया और एक ने उस परमात्मा विशेष पर । तो इक्वेशन एक ही है लेकिन दो खिलाड़ी है । यह दोनों खिलाड़ी इस आत्मा विशेष के लिए तत्पर खेलते रहते हैं लेकिन अंत में इस आत्मा विशेष को ही चयन करना है कि उसने किस खिलाड़ी का साथ देना है । क्या उसने अपने आप को संसार पर न्योछावर करना है या परमात्मा विशेष पर । तो दीन लफ्ज़ विशेष के दो अर्थ हैं । पहला एक तो संसारी दीन यानी के दया का पात्र यानी कोई भी जीव विशेष जो

इस संसार में दयानी स्थिति में है उस पर अपने आप को कुर्बान करना या उसके लिए लड़ना अथवा इत्यादि इत्यादि । दूसरा दीन है यह आत्मा विशेष जो इस शारीरिक पिंजरे में कैद है ८५ लाख जूनों में भ्रमण के बाद । यह आखरी मौका विशेष इसे दिया गया है इस अनंत कठोर भ्रमण के बाद कि वह उस परमात्मा विशेष के लिए अपना प्यार अथवा निष्ठा साबित कर सके और आगे बढ़े । यह कीमती जन्म विशेष इसे दिया गया है अपनी निष्ठा साबित करने के लिए ताकि यह इस महा अनंत घोर भ्रमण के चक्रव्यूह को अंत कर सके और सक्षम और समर्थ होकर के आगे बड़े । यह आत्मा जो इस तीनों मुल्कों की मालकिन है उसे अपने गंदे कर्मों की वजह से इस ८५ में भटकना पड़ता है और विभिन्न पिंजरों में कैद होकर मलीन होना पड़ता है । जो आत्मा अपने आप को मुक्त करने के लिए, इस पिंजरे से निकलने के लिए और इस सृष्टि का उद्धार करने के लिए पुरुषार्थ करती हुई, उस परमात्मा पर निछावर होकर अपना जीवन व्यतीत करती है वही सूरमा विशेष है । अपने को इंद्रियों से निकाल कर उस परमात्मा अथवा रागमई प्रकाशित सुगंधित आवाज विशेष पर कुर्बान होती है वही आत्मा आगे बढ़ती है । वह परमात्मा कहीं दूर नहीं है वह घट-घट में बसा हुआ निरंतर उस आत्मा विशेष के पास ही है उसे कहीं दूर भटकने की जरूरत नहीं है ।

"शब्दे धरती शब्दे आकाश, शब्दे ही शब्द भया प्रकाश । सकल सृष्टि शब्द के पाछे, नानक शब्द घटे घट आछे । "

तो परमात्मा पर निछावर होने वाली आत्माओं विशेषों को कैसे सुख अथवा सुखों की प्राप्ति होगी ? यह कोई नहीं जानता कि उन्हें क्या प्राप्त होगा, संसार में जो बातें फैलाई हुई है सब झूठी अथवा कल्पनाएं विशेष ही है ! हर आत्मा की अपनी चॉइस है कि वह खसम रूप में परमात्मा को कैसा देखना चाहती है, वह परमात्मा की कैसी सृष्टि चाहती है, वैसी सृष्टि प्रधान की जाती है । जब भगवान श्री कृष्ण ने 16000 कन्याओं(आत्मा) से विवाह किया तो उन्होंने उन आत्माओं को इस मृत्यु लोक में वैसे ही उनके चयन अनुसार राज पाट और संरचनाएं प्रदान करी । और जिस रूप में वह उन्हें देखना चाहती थी वैसा ही रूप बनाकर वह प्रत्येक के साथ रोजमर्रा का जीवन यापन व्यतीत करते थे । हर एक सृष्टि का बगल वाली सृष्टि से कोई लेना देना या हस्तक्षेप नहीं था । यह भेद तब उजागर हुआ जब नारद ऋषि किसी कारणवश भगवान को खोजने मृित लोक में आए ।

यह तो सांसारिक दृष्टांत है तो कल्पना कीजिए शब्द द्वारा निर्मित संरचना कितनी आपपरंपार और सोच से परे होगी ! इसका जवाब सिर्फ वही आत्मा जानती है जो उसे परमात्मा में लीन हो जाती है बाकी सब के लिए यह सब कल्पना से परे और सोच से दूर है । जैसा वह आत्मा चाहती है वैसे ही संरचना में निरंतर उस अवस्था में लीन रहती है अनंत काल के लिए ।

"राम(नाम) जपउ जीअ ऐसे ऐसे । ध्रू प्रहिलाद जपिओ हरि जैसे ।"

इसलिए परमात्मा का इन सांसारिक कर्मकांडों अथवा धार्मिक अनुष्ठानों से कोई लेना देना नहीं है । बाणी में हरि रंग की जो बात कही गई है वह नाम अथवा शब्द की ओर इशारा करती है ना कि सांसारिक रंग मेले, जहां रंगों से खेल कर अपने आप को उस हरि रंग में रंगा हुआ माना जाता है । गुरु नानक साहब ने जो बाणी में गुरु-सतगुरु इत्यादि की जो बात करी है वह केवल और केवल उस रागमइ प्रकाशित सुगधित आवाज विशेष के बारे में हैं । बाणी में उन्होंने साफ स्पष्ट किया है कि उनका गुरु - "सबद गुरू सुरत धुन चेला ।" है, उनका अपना ही कोई देह रूपी गुरु नहीं है ।

इसीलिए अब इस आत्मा विशेष को मनुष्य जन्म दिया जाता है और यह फैसला उसने करना है कि उसने संसार कामना है या परमात्मा । आत्मा अगर संसार भी कमाना चाहती है तो वह भी उसे मर्यादा में रहकर कमाना पड़ेगा अगर वह मर्यादाएं लांग कर सृष्टि का हनन करते हुए माया एकत्रित करेगी तो उसकी भरपाई उसे अगले जन्मों में घोर नरको विशेषों के रूप में करनी पड़ेगी । इसी तरह रूहानियत है अगर आत्मा विशेष अपने आप को परमात्मा पर कुर्बान करेगी तो परमात्मा उस पर अनगिनत गुना कुर्बान होगा । तो आत्मा विशेष को इंद्रियों को नियत्रित कर उसे परमात्मा विशेष से जुड़ने की कोशिश करनी चाहिए, संसार में जो यह नाचना कूदना प्रचलित है इसका परमात्मा से कोई लेना-देना नहीं है । कलयुग में कीर्तन प्रधान का मतलब छेने हथौड़े लेकर नाचना कूदना नहीं है, यह अंतर के कीर्तन की बात की जा रही है

जो निरंतर हर वक्त दसवे द्वार पर बज रहा है बिना रुके । "राग नाद सभ को सुणै सबद सुरत समझै विरलोई । (१८-१६-२)" आत्मा विशेष को परमात्मा के साथ जुड़ना है और यह आंख बंद करके तो बिल्कुल ही संभव विशेष नहीं है । "आंख मींच मग सूझ न पाई - ताहि अनंत मिले किम भाई " आंख बंद करके तो रास्ता भी नहीं नजर आता तो वह अनंत परमात्मा की प्राप्ति कैसे हो जाएगी । आंख खोल के इंद्रियों समेत मनुष्य जन्म की कीमत पहचानो, पुरुषार्थ करो, मर्यादित बनो और अपनी जरूरत से ज्यादा संपत्ति को जरूरतमंदों में खूब वितरण करो । जब तक आत्मा विशेष के अंतर से पूर्ण सच्चाई और निष्कपट्टा से यह आवाज नहीं आएगी की बहुत जन्म बिछड़े थे माधव यह जन्म तुम्हारे लेखे तब तक आत्मा विशेष का उद्धार होना मुश्किल ही नहीं बल्कि नामुमकिन है किसी भी काल विशेष में । इन समीकरणों को परमात्मा भी अगर चाहे तो बदल नहीं सकता, तो किसी देहदारी गुरु-सतगुरु इत्यादि इत्यादि की क्या हस्ती विशेष है, यह अटल है किसी भी काल विशेष में ।

ऐक शब्द

साध संगत जी, यदि कुछ भी जरा सा भी कम रह गया अथवा बड़ गया है तो हम दोनों हाथ जोड़कर नतमतसक आपसे क्षमा प्रार्थी हैं । अतः कृपया क्षमा प्रदान करें और बख्शने की भी कृपालता करें - धन्यवाद ।

सृष्टि में सदा ही कोई एक विरला - दुर्लभ - मर्यादित - महाजीव विशेष विद्यमान होता ही है, अतः हम उस महा प्राणी को दोनों हाथ जोड़ नतमतसक सदा ही नमस्कार करते हैं ।